राष्ट्रीयता, मानव एकता और श्री अरबिंद

नीरज कुमार चौधरी
असिस्टेंट प्रोफेसर, प्रो0 एच0 एन0 मिश्रा कॉलेज ऑफ एजूकेशन, कानपुर

सारांश

राष्ट्रवाद, निकट भूत एवं , विशेषकर , वर्तमान परिदृश्य में किसी न किसी कारण से स्थानीय एवं वैश्विक स्तर पर चर्चा का केंद्र बिंदु रहा है। राजनेता , मीडिया, एवं प्रबुद्ध वर्ग इसमें सक्रिय भागीदारी करते नजर आए और आ रहे हैं। कुछ इसे राष्ट्रीयता एवं एकता के लिए आवश्यक मानते हैं तो कुछ इसे संकीर्ण एवं मानव एकता के लिए नकारात्मक। राष्ट्रवाद के संदर्भ में यह स्थिति 18–19 वीं सदी के मध्य इसके उदय से ही रही। तथापि वैश्विक इतिहास की रचना में राष्ट्रवाद की अति महत्वपूर्ण भूमिका रही। आज के वैश्विक परिदृश्य में विश्व के प्रायः सभी प्रमुख राष्ट्र पुनः अपनी संप्रभुता, राष्ट्रीय अस्मिता, पहचान एवं हितों को लेकर अत्यंत संवेदनशील हैं। अतः इसका अध्ययन आवश्यक है। प्रस्तुत शोध–पत्र राष्ट्रीयता एवं मानव एकता के संबंध में श्री अरबिंद के दर्शन के आलोक में एक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करने का प्रयास है।

संकेत शब्द : *राष्ट्र, राष्ट्रीयता, राष्ट्रवाद, मानव एकता।*

प्रस्तावना :–

"राष्ट्रवाद केवल देश –भक्ति या बौद्धिकों का मनोविनोद नहीं है बल्कि गहरी एवं उत्कट आध्यात्मिक साधना है।" – श्री अरबिंद (बन्दे मातरम साप्ताहिक संस्करण, अप्रैल 12,1908)

प्राचीन काल से ही लोग अपनी मातृभूमि, नृजातीयता, धर्म, भाषा, संस्कृति, स्थापित क्षेत्रीय स्वायत्तता एवं इससे परिणामित पहचान के प्रति गहरा लगाव रखते आए हैं। ऐसे ही समान विशिष्टता वाले लोगों का समूह, 'राष्ट्रवाद' शब्द के प्रतिपादक जॉन गॉडफ्रेड हर्डर के अनुसार एक राष्ट्र का निर्माण करते हैं। लेकिन स्पष्ट है कि ऐसा राष्ट्र शायद ही कोई हो जो एक निश्चित विशिष्ट गुण– कुल ,या धर्म ,या भाषा, अथवा जातीयता के आधार पर ही अस्तित्व में है। इसके विपरीत कई राष्ट्रों की अपनी कोई एकमात्र भाषा नहीं है, जैसे– भारत, कनाडा आदि। बहुत से राष्ट्र में उनको एक करने वाला कोई एकमात्र धर्म भी नहीं जैसे– अमेरिका, भारत ,फ्रांस, कनाडा ब्रिटेन आदि। यही बात नस्ल, जातीयता, या कुल के बारे में भी कही जा सकती है। हालाँकि इसके विपरीत,कई राष्ट्र जो भाषा या धर्म के आधार पर निर्मित हुए, वहाँ भी आंतरिक अलगाव एवं बिखराव देखने को मिलता है। तब वह क्या है ,जो राष्ट्र का निर्माण करता है?(विकीपीडिया 2020)।

2. राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता, एवं राष्ट्र :

राष्ट्र के निर्माण में राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता एक विचारधारा या आंदोलन के रूप में अपेक्षाकृत आधुनिक संप्रत्य है, जिसका उदय 18 वीं सदी के उत्तरार्ध में यूरोप में हुआ। लेकिन पुनर्जागरण के बाद राष्ट्रवाद एक ऐसी प्रभावशाली वैश्विक शक्ति थी जिसने सार्वजनिक व निजी जीवन को गहराई से प्रभावित किया एवं जिसकी प्रबलतम अभिव्यक्ति अमेरिकी एवं फ्रांसीसी क्रांतियों के रूप में आरंभ हुई और तदन्तर में कई 'राष्ट्र–राज्यों' (Nation-state) के विकास में परिणामित हुई। 'राज्य' (State) की आधुनिक संकल्पना एक ऐसी स्पष्ट रूप से परिभाषित क्षेत्र के रूप में की गई थी जिसमें प्रभुसत्ता एक केंद्रीय शक्ति की थी। परंतु, राष्ट्र–राज्य (Nation-state) में न केवल उसके शासकों बल्कि उसके अधिकांश नागरिकों में एक

साझा पहचान का भाव और साझा इतिहास या विरासत की भावना थी । हालाँकि साझेपन की भावना अनंत काल से नहीं थी, यह लंबे साझा संघर्षों और नेताओं तथा आम लोगों की सक्रियताओं से गढ़ी गई थी (NCERT,2007)। तदन्तर में यही वे भाव थे जिसे राष्ट्रवाद के मूल के रूप में आम स्वीकृति मिली। फिर भी राष्ट्रवाद के किसी आम सहमत सिद्धांत का अभी भी अभाव है।

फ्रांस, जहां कि राष्ट्रवाद को सशक्त अभिव्यक्ति मिली थी, के एक प्रसिद्ध दार्शनिक अर्न्स्ट रेनन (Ernst Renan) ने सॉबॉन (Sorbonne) विश्वविद्यालय में 1882 में दिए गए एक व्याख्यान में राष्ट्र के निर्माण के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किए। बाद में यह व्याख्यान एक प्रसिद्ध निबंध के रूप में प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक था– 'Qu'-est-ce qu'une nation?' – ('राष्ट्र क्या है ?')। इस निबंध में रेनन अन्य लोगों द्वारा प्रस्तावित इस विचार से असहमत दीखता है कि राष्ट्र समान भाषा, नस्ल, धर्म या क्षेत्र से बनता है। वह कहता है कि एक राष्ट्र अतीत के लंबे प्रयासों, त्याग और निष्ठा की चरम परिणति होता है। शौर्य युक्त अतीत, महान पुरुष, गौरव – वह सामाजिक पूंजी है जो एक राष्ट्रीय विचार को आधार प्रदान करता है। अतीत में समान गौरव का होना, वर्तमान में समान संकल्प होना, साथ मिलकर महान कार्य का निष्पादन, और भविष्य में ऐसे ही और कार्य करने की कामना – एक जनसमूह (People) होने की यह सब आवश्यक शर्तें हैं। अतः राष्ट्र एक बड़ी और व्यापक एकता है (Large-scale solidarity)। एक राष्ट्र कभी भी किसी अन्य राष्ट्र को उसकी इच्छा के विरुद्ध अधीन करने या नियंत्रित करने में रुचि नहीं रखता है। राष्ट्र का अस्तित्व एक अच्छी चीज है,यहाँ तक कि यह एक आवश्यकता है।

19वीं सदी के यूरोपीय 'राष्ट्रवाद के युग' में यह एक सामान्य स्वीकृत सिद्धांत था कि प्रत्येक राष्ट्रीयता (कुल, धर्म, भाषा व संस्कृति आधारित) को एक राज्य का निर्माण करना चाहिए एवं इसमें उस राष्ट्रीयता के समस्त सदस्य शामिल होंगे। ऐसे राज्य राष्ट्र–राज्य (Nation-state) कहलाए। मैजिनी जैसे क्रांतिकारी विश्वास करते थे कि यह ईश्वर की इच्छा थी कि राष्ट्र मानव की एक इकाई बने। राष्ट्रवाद के इस विचार पर कई साम्राज्य और औपनिवेशिक शक्तियों को उखाड़ कर 19वीं सदी से 20वीं सदी तक कई राष्ट्र–राज्यों का उदय हुआ। लेकिन इस शक्ति के वेग में अतिवाद भी पनपने लगा तथा एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों को अपने से हीन या तुच्छ भी सिद्ध करने पर उतर आया। इतिहास ने इस अतिराष्ट्रवाद की परिणति मानव नस्लों या धर्मों के बीच घृणा और युद्धों के रूप में देखा। इन विभीषिकाओं ने राष्ट्रवाद को ही विवादास्पद बना दिया, जो स्वाभाविक था।

भारत में भी राष्ट्रवाद का गहरा प्रभाव पड़ा और इसके बिना भारत कि गुलामी से मुक्ति भी संभव नहीं होती। लेकिन भारतीय चिंतकों जैसे विवेकानंद, श्री अरबिंद, गांधी , या राधाकृष्णन आदि कि राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता (Nationality) का उद्घोष राष्ट्र–सेवा, आत्म–बलिदान, एवं आध्यात्मिकता तथा आत्म–उत्थान पर आधारित थी। किसी से श्रेष्ठ दिखने या किसी को हीन सिद्ध करने की चेष्टा राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता की संकल्पना से परे थी।

3. श्री अरविंद एवं राष्ट्रीयता :

राष्ट्रीयता को राष्ट्रवाद के उत्पाद या पर्याय के रूप में देखा जाता है। राष्ट्रीयता की प्रचलित पाश्चात्य मान्यता के संदर्भ में श्री अरविंद ने बंदे मातरम् पत्रिका (अगस्त 17, 1907) में लिखा, " Every nationality has been formed in spite of diversity of race] religion] and language and often in spite of coexistence of all the diversities-" उन्होंने पुनः इंगित किया– "The English nation has been built not only out of various races but keep to this day the distinct individuality also and each one of them clings to its language tenaciously-"

पुनः वे स्विट्जरलैंड का उदाहरण लेते हुए कहते हैं कि कैसे वहां विभिन्न नस्लों के लोग तीन अन्य भाषाओं के साथ अपने अपने धर्म को मानते हुए बिना अपनी कोई पहचान खोए एक राष्ट्र के रूप में एकीकृत और जुड़े हैं। इसी तरह उन्होंने फ्रांस आदि राष्ट्रों का भी उल्लेख किया है (तिवारी 2013)।श्री अरबिंद का मानना था कि नस्ल, धर्म और भाषा की एकता राष्ट्रीयता के विकास में सहायक तो हो सकती है परंतु ये तत्व अपरिहार्यता की परख पर खरी नहीं उतरती हैं। वह बहुत निपुणता से रोमन साम्राज्य की ओर इशारा करते हुए कहते हैं, हालाँकि इसने समान भाषा, समान धर्म एवं जीवन शैली का निर्माण किया तथा अपने प्रभावशाली एकसमान व्यवस्था से हर नस्लीय विविधता को मिटाने का हर संभव प्रयास किया तथापि यह एक महान राष्ट्र बनने में सफल नहीं हुआ।

तब, श्री अरबिंद पूछते हैं, राष्ट्रीयता के आवश्यक तत्व कौन–कौन से हैं? वे ही उत्तर देते हैं – "We answer that there are certain essential conditions, geographical unity, a common past, a powerful common interest impelling towards unity, and certain favourable political conditions which enable the impulse to realise itself in an organised government expressing the nationality and perpetuating single united existence- A common enthusiasm coalescing with common interest is the most powerful fosterer of nationality." (Tiwari, 2015).

राष्ट्र–इकाई के निर्माण के आधारभूत तर्क और औचित्य को वे केवल अनुष्ठानिक या विशुद्ध आकस्मिक नहीं मानते हैं। वे मानते हैं कि इसके उच्च और उदात्त उद्देश्य हैं, कि ये मानव समूहन का ऐसा साँचा प्रदान करे जिसमें न केवल व्यक्ति या वर्ग विशेष बल्कि पूर्ण मानव प्रजाति अपनी पूर्ण मानवता के विकास की तरफ अग्रसर हो सके। अतः राष्ट्र के जीवन में एक ऐसी अवस्था अवश्य आनी चाहिए कि समस्त नर और नारी अपने अंदर मानवता की गरिमा और स्वतंत्रता को प्राप्त कर सके एवं इसे सर्वोच्च क्षमता तक क्रियान्वित कर सके। एक राष्ट्र–इकाई मौलिक रूप से मनोवैज्ञानिक एकता की या उस राष्ट्र –आत्मा की अभिव्यक्ति है जिसमें व्यक्तिगत या सामूहिक अहंवाद के त्याग एवं सांप्रदायिक सीमाओं के परे सोचने का गुण होता है। श्री अरबिंद के अनुसार, इसके पश्चात ही स्वतंत्रता, समानता, और इससे भी महान, बंधुता तथा सच्ची आंतरिक एकात्मता की ऊँचाई तक मानव पहुँच सकता है। यह किसी सामाजिक, राजनीतिक, या धार्मिक तरीकों से नहीं प्राप्त की जा सकती बल्कि इसे आत्मा में ही जन्म लेना पड़ेगा एवं अंतर्निहित गुप्त एवं दिव्य गहराई से उदित होना होगा।

व्यक्तियों की सच्ची आंतरिक एका ही स्थिर राष्ट्र का निर्माण करती है ना कि राजनैतिक एका। महान रोमन साम्राज्य, ऑटोमन साम्राज्य, या ऑस्ट्रियन साम्राज्य के विघटन का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है।

4. अध्ययन की प्रासंगिकता :

सामान्यतया राष्ट्रीयता का तात्पर्य है एक ऐसी भावना से है जो एक राष्ट्र विशेष से संबंधित एवं सीमित है। यह भी एक सामान्य धारणा है कि एक राष्ट्र की राष्ट्रीयता दूसरे राष्ट्रों के विकास में बाधक हो सकती है; और इस प्रकार यह एक संकुचित भावना की अभिव्यक्ति है, एक प्रकार की संकीर्णता है, संकुचित विचारधारा है, जो कि मानव एकता के व्यापक संप्रत्यय, जिसका संबंध संपूर्ण मानवता से है, तक विस्तृत होने में असमर्थ सी लगती है।

वर्तमान परिदृश्य में विश्व के लगभग सभी प्रमुख देश, राजनेता, या अधिकांश जनता चाहे पूर्व के हो या पश्चिम के, अपनी राष्ट्रीयता, विशिष्ट पहचान, एवं आर्थिक हितों को लेकर अत्यंत संवेदनशील हो गए हैं। इन्हें अति उदारतावाद, अंतर्राष्ट्रीयतावाद,खुली अर्थव्यवस्था एवं असीमित व्यापार से घबराहट होने लगी है। तो क्या यह मानव एकता के लिए शुभ संकेत नहीं है? इस आशंका का समाधान हम श्री अरबिंद की

राष्ट्रीयता के दर्शन की पृष्ठभूमि में ढूंढेंगे। विगत वर्ष में अजरबैजान एवं आर्मेनिया जैसे राष्ट्रों के बीच का युद्ध ,या चीन का अपने पड़ोसी राष्ट्रों के साथ युद्ध की स्थिति, या वर्तमान में रूस और युक्रेन के बीच सैन्य संघर्ष की निर्मित होती स्थिति इस विषय को और प्रासंगिक है एवं समीचीन बना देता है।

5.राष्ट्रीयता एवं मानव एकता :

राष्ट्रीयता है तो संकीर्णता का एक प्रकार ही पर इसे विस्तृत संकीर्णता कहना अधिक अच्छा रहेगा। संकुचित संकीर्णता से विस्तृत संकीर्कणता कहीं अधिक श्रेष्ठ है। जब कोई व्यक्ति अपनी क्षुद्र कामनाओं एवं स्वार्थों की पूर्ति तक ही सीमित रहता है तो इसे संकीर्णतम संकीर्णता समझा जाना चाहिए। जब व्यक्ति अपने स्वयं से आगे परिवार के हितों की सोचता है तो उसकी संकीर्णता के दायरे का विस्तार होना प्रारंभ हो जाता है। इसके आगे जब वह क्रमशः गांव, प्रखंड, तहसील, जनपद, प्रदेश और राष्ट्र के हितों को अपने हितों में स्थान देता है तो उत्तरोत्तर उसकी संकीर्णता का विस्तार होता चला जाता है। राष्ट्र स्तर के हितों की बात सोचने से राष्ट्रप्रेम एवं राष्ट्रभक्ति की ओर आकृष्ट होने के क्रम में मनुष्य विस्तृत संकीर्णता की ओर बढ़ता है। तथापि , जब तक कोई सीमा रहेगी संकीर्णता रहेगी भले ही संकीर्णता की सीमा में उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ यह संकीर्णता वृहत्तर और व्यापक संकीर्णता का स्वरूप ले ले।

जब राष्ट्रीयता सभी राष्ट्रों एवं मानवता तक फैल जाती है तो उसके संकुचित स्वरूप का स्थान विशद व्यापकता ले लेती है, अर्थात स्वराष्ट्र का हित समस्त राष्ट्रों और अंततः मानवता के हितों में निहित दिखाई देने लगता है। राष्ट्रीयता की इस प्रवृति के कारण राष्ट्रीयता मानव एकता में सहायक सिद्ध होती है। श्री अरविंद के चिंतन में भी राष्ट्रीयता और मानव एकता में परस्पर विरोधाभास ना होकर सहायक एवं पूरक की भावना परिलक्षित होती है ।यह धारणा 'विश्व–राष्ट्र' की कल्पना जैसा है जो भारत की 'वसुधैव कुटुंबकम' की प्राचीन परंपरा के अनुरूप ही है (मिश्र, 2013)।

राष्ट्रीयता एवं मानव एकता के संबंध को और स्पष्ट स्वरूप श्री अरबिंद के विचारों में मिलता है। उनके विचार से व्यक्ति राष्ट्र का अंग है। व्यक्ति की वैयक्तिकता, स्वधर्म, और पूर्णता को राष्ट्र द्वारा पोषण मिलता है। एक राष्ट्र के अंदर व्यक्ति अपने विशेषताओं के साथ अपना विकास करने को स्वतंत्र है। इसी प्रकार , उनके अनुसार, विश्व राष्ट्र ऐसा होना चाहिए जिसमें प्रत्येक राष्ट्र अपनी विशेषताओं, संस्कृति, धर्म और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करते हुए मानवता के विकास में योगदान कर सके। इस प्रकार प्रत्येक अंग (व्यक्ति , राष्ट्र)स्वयं में पूर्ण है और वृहत्तर पूर्ण (विश्व–राष्ट्र) का एक अंग है। स्पष्ट है कि व्यक्ति स्वयं में पूर्ण है पर राष्ट्र का एक अंग अथवा घटक है। इसी तरह राष्ट्र स्वयं में पूर्ण है पर मानवता या वैश्विक समाज, जो कि राष्ट्र से विस्तृत संप्रत्यय है, का एक घटक या अंग है। अतः राष्ट्रीयता एवं मानवता या मानव एकता में 'घटक एवं पूर्ण' होने का संबंध है। जब तक घटक तत्वों (राष्ट्रीयता) में तालमेल अथवा संगति या एकता बनी रहेगी तब तक मानवता के विकास की गति बिना किसी विघ्न के बनी रहेगी।

जो सिद्धांत राष्ट्र का विकास करते हैं वे सिद्धांत ही सभी मनुष्य में एकता के विकास में सहायक होते हैं। जिस प्रकार व्यक्ति और राष्ट्र के पोषण, रचना एवं विकास में घटक तथा पूर्ण का संबंध लागू होता है और बिना व्यक्ति के विकास के राष्ट्र का विकास, या इसके विपरीत, बिना राष्ट्र के विकास के व्यक्ति का विकास संभव नहीं है; उसी प्रकार बिना राष्ट्रीयता या राष्ट्रों की स्वतंत्रता सुनिश्चित किए मानव एकता का विकास, या इसके उलट, मानव एकता अथवा मानवता के विकास के अभाव में राष्ट्रीयता व राष्ट्र की स्वतंत्रता का पोषण भी सुनिश्चित करना संभव नहीं है। ये दोनों अन्योन्याश्रित तथा परस्पर पूरक हैं।

निष्कर्ष यह कि मानवता या मानव एकता के विकास में राष्ट्र या राष्ट्रीयता का विकास बाधक ना होकर साधक है। संभवतः इसी तरह की संकल्पना के आधार पर संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्थाओं की स्थापना और विकास किया गया और इसका लगातार विस्तार किया जाना चाहिए। यूनेस्को (UNESCO)

जैसी संस्थाओं, अंतर्राष्ट्रीय या राष्ट्रीय शैक्षिक संस्थाओं द्वारा भी यही भाव समस्त युवाओं एवं बौद्धिक समुदाय में जागृत करने का हरसंभव एवं निरंतर प्रयास किया जाना चाहिए। शिक्षा तभी अपने वृहत्तर लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगी।

संदर्भ सूची :

मिश्र, जे. पी. (2018). श्री अरबिंद, भारतीय सामाजिक विचारधारा मे लिखित अध्याय–3, प्रयागराज : कुलसचिव,उ. प्र. राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय.

Aurobindo, S. (1908). Bande matram, Weekly Edition, April 17, 1908. Retrieved from www.motherandsriaurobindo.in on October 24,2020.

NCERT. (2018). India and contemporary world, textbook in history for class X. New Delhi: NCERT.

Tiwari R.(2013), Sri aurobindo's philosophy of nationalism and internationalism. *International Journal of research in Humanities and Social Sciences*, *l*(9). Retrieved from www.raijmr.com on January 04,2022

www.motherandsriaurobindo.in (2020,Oct.), Retrieved on October 24,2022.

How to cite reference of this paper-

Choudhary, N. K. (2022). राष्ट्रीयता, मानव एकता और श्री अरबिंद. *Educational Metamorphosis, 1*(1), 44-48.